International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(4): 163-166

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(4): 163-166
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 24-05-2023
Accepted: 28-06-2023

डॉ.आशीष कुमार बिठौरे
वरिष्ठ अध्येता, प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्यप्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ.आशीष कुमार बिठौरे
वरिष्ठ अध्येता, प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्यप्रदेश, भारत

मानव समाज में युद्ध का औचित्य

डॉ.आशीष कुमार बिठौरे

प्रस्तावना

युद्ध और युद्ध प्रणाली उतनी ही प्राचीन है, जितनी कि मानव–जाति की कहानी। मानव–जीवन की कहानी युद्धों से भरी पड़ी है क्योंकि भौतिक संसार में युद्ध और संघर्ष मानव के सहचर हैं। यदि देखा जाय तो प्राचीनकाल से लेकर आज तक युद्धों ने एक नया समाज, सभ्यता और संस्कृति को जन्म दिया है। लेकिन अन्त में वह नवीनतम् सभ्यता भी अपनी सुलगाई आग में भस्म हो गई। संघर्ष विश्वव्यापी है। व्यक्ति समाज, देश या राष्ट्र हर किसी का अस्तित्व शक्ति पर कायम रहता है, क्योंकि अस्तित्व की सुरक्षा के लिये ही युद्ध अपरिहार्य हो जाता है। यदि मानव–जाति के उद्भव और विकास के इतिहास पर नजर डाली जाये तो यही जान पड़ता है कि यह वसुन्धरा प्रारम्भ से ही वीर भोग्य है। यह वसुन्धरा कायरों और दुर्बलों के लिये कोई स्थान नहीं रखती। आत्मरक्षा और आत्म–विश्वास ही मानव का सर्वोपरि लक्ष्य रहा है।

जब से मनुष्य ने पृथ्वी पर पदार्पण किया है, तभी से वह युद्ध करता आया है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति समाज अथवा राष्ट्र युद्ध से कतराता रहा है, फिर भी वह इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। यद्यपि इतिहास का हम अध्ययन करें तो देखते हैं कि मनुष्य ने सर्वप्रथम युद्ध के लिये शस्त्रों का निर्माण किया न कि औजारों का जिससे कि शांतिपूर्ण कार्य किये जाते हैं। विभिन्न युगों में भिन्न–भिन्न तरीके से परिभाषित किया गया है किन्तु सामान्यता युद्ध एक हिंसात्मक कार्यवाही है, एक समूह दूसरे समूह की सिर्फ एक गलती के कारण हत्या करता है क्योंकि वह विरोध पक्ष में सम्मिलित है।

वास्तव में भिन्न–भिन्न लोग युद्ध का पृथक अर्थ लगाते हैं, किन्तु युद्ध इतना सामान्य और प्रचलित है तथा दैनिक जीवन में इसका अधिक उपयोग है कि सम्भवतः ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा, जिसे यह ना मालूम हो कि युद्ध का अर्थ क्या है? यदि देखा जाये तो युद्ध का शाब्दिक अर्थ 'लड़ना' होता है लेकिन प्राविधिक विचार से युद्ध और लड़ाई को ही 'युद्ध' की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। यदि देखा जाए तो 'युद्ध' शब्द लड़ाई की अपेक्षा अधिक भयावह और हिंसा का दायरा अधिक रहता है। युद्ध अधिक समय तक चलने वाली लड़ाई को कहते हैं। ज्ञातव्य है कि जब दो या दो से अधिक राज्यों के बीच युद्ध होता है तो राज्यों के सम्पूर्ण नागरिक युद्ध की 'ज्वाला' में कूद कर स्वाहा नहीं होते, बल्कि युद्ध से संलग्न राज्यों की सेनाएँ ही लड़ाई में विधिवत भाग लेती हैं। अतः इस नाते बहुत ही बारीकी ढंग से अध्ययन करके देखा जाय तो सामान्य रूप से यही कहा जा सकता है कि युद्ध दो या दो से अधिक राज्यों अथवा राष्ट्रों की सेनाओं के बीच होने वाली लड़ाई है।

युद्ध सामाजिक विघटन का सबसे बड़ा स्वरूप है, जिस पर परस्पर विरोधी राष्ट्र या वृहत सामाजिक समूह हिंसात्मक साधनों द्वारा एक–दूसरे पर प्रतिघात करते हैं। वैसे समय–समय पर विभिन्न विद्वानों, दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों, सेनापतियों तथा विधान शास्त्रियों ने युद्ध को भिन्न–भिन्न रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है ये परिभाषाएँ उनके काल और व्यवसाय की छाप को अपेक्षित न कर सकीं। वास्तव में युद्ध सदैव एक सामाजिक तथ्य रहा है। परिवर्तित समाज, धर्म, अर्थ के साथ उनकी परिभाषाएँ बदलती गयी, यद्वपि धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक और नैतिक पद्धतियों पर परिवर्तित ही नहीं होती, अपितु समय–समय पर वे पूर्णतया ''लोप हो जाया करती हैं, सैनिक पद्धतियाँ भी बदलती हैं, तथापि युद्ध का कभी विनाश नहीं होता।

शक्ति स्थापित करने की पवित्र प्रतिज्ञायें युद्ध निरोधक राष्ट्रीय चेतनाएँ, निःशस्त्रीकरण के हेतु की गयी सन्धियाँ सभी निरन्तर युद्ध की दावानल से स्वाहा होती रही है। जैसे–जैसे सभ्यता बढ़ी वैसे ही वैसे प्रत्येक शताब्दी ने महाविनाशक युद्ध देखे, जो कि पिछले युद्धों से कहीं अधिक विनाशकारी और निर्मम सिद्ध हुए। सम्राटों के युद्ध, राष्ट्र के युद्ध होने लगे। विश्व मंच युद्ध–नाट्य से कभी मुक्त नहीं रहा। यदा–कदा पटाक्षेप केवल उसको अधिक बर्बर और क्रूर बनाने के लिये अवकाश मात्र थे।

वास्तव में चर्चिल ने ठीक ही कहा था–"मानव–जाति का इतिहास युद्ध ही है और पूर्व काल में तो हत्यापूर्ण संघर्ष कभी समाप्त ही नहीं हुए।" इसी प्रकार अमेरिका के शहीद राष्ट्रपति कैनेडी ने भी लिखा है कि इतिहास के प्रारंभ से ही युद्ध मानव–जाति की अटूट सहचर रहा है, यह हमारे इतिहास में नियम रहा है न कि अपवाद।" सम्भवतः ऐसे मनुष्यों की भावनाएँ युद्ध को कभी रोक नहीं सकती। यहाँ तक कि कुछ लोग तो युद्ध को एक साहसिक कार्य मानते हैं, जो रूचिकर हो सकता है, लाभकारी उपकरण हो सकता है अथवा अस्तित्व की एक दशा है, जिसके लिये मनुष्य को तैयार रहना चाहिए। कुछ विद्वानों के विचार से युद्ध एक समस्या है तो कुछ के मतानुसार समस्या नहीं। उनके अनुसार विद्या–विशारद द्वारा युद्ध के परिणामों को सरलता से समझा जा सकता है। अब हम पौरस्त्य और पाश्चात्य विद्वानों के मतों का विधिवत अध्ययन अलग–अलग करेंगे।

प्राचीन भारत में युद्धों को राजनीतिक ही नहीं धार्मिक कर्तव्य भी माना जाता था। अपने कर्त्तव्य पालन के प्रति जागरूकता लौकिक लाभों के साथ–साथ पारलौकिक लाभों (पुण्यों) का सृजन करती थीं। युद्ध अनादिकाल से होता आ रहा है। सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में दशराज युद्ध के अतिरिक्त आर्यों और अनार्यों के बीच का युद्ध विषयक वृत्तान्त भरा पड़ा है। रामायण, महाभारत और गीता के माध्यम से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में युद्ध को एक अनिवार्य विपत्ति नहीं, प्रत्युत धर्म का एक प्रधान अंग माना जाता था। धर्म युद्ध की बड़ी मर्यादा थी। भारतीय इतिहास के साथ–साथ युद्ध सम्बन्धी चिन्तन का विकास हुआ। कौटिल्य अर्थशास्त्र के समय तक यह चिन्तन काफी प्रौढ़ हो चुका था।

युद्ध को क्षत्रिय को कर्त्तव्य बताने का श्रेय विशालाक्ष को प्रदान किया जा सकता है, जिन्होंने स्पष्ट मत प्रकट किया था कि शक्ति क्षमता पर विचार करने के उपरान्त युद्ध करे। पराक्रम ही आपत्ति को दूर है। युद्ध करना क्षत्रिय का धर्म है– युद्ध में जय मिले अथवा पराजय।

यह भावना गीता में और अधिक प्रबल प्रतीत होती है। भगवान श्रीकृष्ण कुरूक्षेत्र के मैदान में अपने बान्धवों और सम्बन्धियों से युद्ध करने से विचलित और क्लान्त अर्जुन को क्षत्रिय धर्म समझाते हुए कहा था कि –"धर्म युद्ध क्षत्रियों का स्वधर्म है, जो त्याज्य नहीं है। यह धर्मयुद्ध स्वर्ग का द्वार हैं हे पार्थ! युद्ध से अधिक क्षत्रिय के लिये श्रेयस्कर कुछ नहीं है।"(गीता2/31–33) पुनः श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिये उत्साहित करते हुए कहा है–

हे अर्जुन! तू युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त करेगा अथवा युद्ध में जीतकर पृथ्वी का राज्य भोगेगा। अतः युद्ध के लिये निश्चय करके खड़ा हो जा । जय–पराजय– लाभ–हानि और सुख–दुख को समान समझ कर, उसके बाद युद्ध के लिये तैयार हो जा क्योंकि इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त करेगा।

महाभारत का कहना है कि "युद्ध धर्म है, किन्तु पाश्विक शक्ति का प्रदर्शन करने के लिये युद्ध करना पाप है। जहाँ धर्म है, वहीं विजय है–य तो धर्मस्ततो जयः।"

शुक्राचार्य का कहना है कि –"दो ही तरह के आदमी सूर्य लोक को वेध कर स्वर्ग को प्राप्त कर सकते हैं– एक योगी, दूसरा सैनिक। युद्ध क्षेत्र में मित्रों को धोखा देकर जो भाग खड़े होते हैं, वे घोर नरक के भागी होते हैं।

वाल्मीकि ने उल्लेख किया है कि युवराज अंगद ने युद्ध की महत्ता स्पष्ट करते हुए अपने सैनिकों से कहा था कि शत्रु का संहार करने से हम लोगों का संपूर्ण संसार में यश फैल जायेगा और स्वयं मारे गये तो वीरों को प्राप्त करने योग्य ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य को भोगेंगे।

धर्मशास्त्र के प्रणेता मनु का कहना है कि युद्ध से परामुख होना, प्रजा का पुत्र की तरह पालन करना, ज्ञानियों की तरह से श्रद्धापूर्वक सेवा करना उनका परम धर्म है जो शासक अपरामुख होकर अपनी सारी शक्ति लगाकर युद्ध करता है, वह स्वर्ग का अधिकारी होता है।

याज्ञवलक्य का कथन है जो मातृभूमि के लिये अपना बलिदान करते हैं, जहरीले अस्त्रों का प्रयोग नहीं करते हैं। वे योगियों की भाँति स्वर्ग में स्थान पाते हैं।"

उपर्युक्त तथ्यों से प्रमाणित होता है कि प्राचीनकाल में युद्ध का एक आवश्यक अंग था, युद्ध में मृत्यु स्वर्ग प्रदान करती थी और विजय राज्य।

युद्ध को केवल कर्त्तव्य के रूप में न देखकर उसकी बहुलता को रोकने के लिये भारतीय चिन्तकों ने युद्ध धर्म अर्थात युद्ध की वैधानिकता एवं वैधता की भावना विकसित की थी। विजय की अनिश्चितता को ध्यान में रखते हुए कहा है कि साम, दाम, भेद तीनों उपायों के साधक न होने पर ही सैन्यादि शक्ति से संयुक्त होकर राजा को युद्ध करना चाहिए। पहले युद्ध से शत्रु को जीतने की कदापि चेष्टा न करें क्यों कि युद्ध करे हुए दो पक्षों को विजय तथा पराजय, युद्ध में अनिश्चतता रहती है। शुक्र नीति के अनुसार भी अन्य उपायों के विफल होने पर ही युद्ध के मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए।

शतपथ ब्राह्मण के एक प्रसंग में युद्ध की परिभाषा की गयी है। इस परिभाषा के अनुसार राज्न्य के बल–प्रदर्शन को युद्ध की संज्ञा प्रदान की गयी है। (युद्ध में राजन्यस्य वीयेम्) इसी प्रसंग में राजन्य शब्द की भी व्याख्या की गयी है, इस व्याख्या के अनुसार क्षेत्र ही राजन्य है (क्षेत्र वै राजन्यः) अर्थात् क्षात्र बलधारी पुरूष राजन्य कहलाता था।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार शत्रु को हानि पहुँचाने वाले द्रोह या हिंसा पूर्ण कार्य करना युद्ध है (अपकारो विग्रह 717) शुक्राचार्य के मतानुसार शत्रु को पीड़ित और वशीभूत करने वाला कार्य युद्ध है।

श्रीमती उषा सक्सेना ने युद्ध की परिभाषा करते हए कहा है किः– "युद्ध दो या अधिक राष्ट्रों के बीच सशस्त्र प्रतियोगिता को कहते हैं।" इस प्रकार सशस्त्र प्रतियोगिता का उद्देश्य एक राज्य का दूसरे राज्य पर अपनी शर्तों को थोपना है। इसका उद्देश्य शक्ति के प्रयोग द्वारा शत्रु को परास्त करना होता है, पर आदि काल से ऐसा परम्परागत नियम चला आया है कि शक्ति का प्रयोग केवल कुछ मान्य सिद्धान्तों के अनुसार ही किया जाता है, मनमानी रीति से नहीं।

मेजर आर.सी. कुलश्रेष्ठ ने युद्ध को परिभाषित करते हुए कहा है कि –"विस्तृत रूप से युद्ध एक ही जाति के पृथक वर्ग के हिंसात्मक आक्रमण हैं।" आगे यह कहा है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र अथवा वर्ग पर अपनी प्रेक्षाओं को आरोपित करना चाहता हैं वे प्रेक्षायें, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक अथवा मनोवैज्ञानिक क्षेत्र से उत्पन्न होती हैं। इन प्रेक्षाओं को दूसरे देशों पर आरोपित करने के लिये वह राष्ट्र सैन्य अथवा अन्य शक्तियों का सहारा ले सकता है।

युद्ध संघर्ष का एक रूप है। समूह संघर्ष कई विधियों से जारी रखे जा सकते हैं, जिनमें से युद्ध केवल एक है। परन्तु आजकल युद्ध तथा समूह–संघर्ष के अन्य विधियों के बीच कोई लक्ष्मण रेखा खींचना सम्भव नहीं है, लेकिन कुछ लोगों की यह धारणा बन गयी है कि युद्ध सनातन है अर्थात् युद्ध सदैव से ही वर्तमान रहा है, दुनिया से इसका समापन अथवा लोक कभी सम्भव नहीं। अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी–अपनी बौद्धिक रूचि के अनुसार विभिन्न दृष्टिकोण को अपनाकर इस गम्भीर समस्या को समझने का प्रयास किया है। प्रसिद्ध समाज एवं युद्ध शास्त्री, क्विन्सी राईट ने विद्वानों द्वारा अपनाये गये विभिन्न दृष्टिकोणों को इस प्रकार गिनाया है, "न्यायिक, सामाजिक तथा सांश्लेषिक दृष्टिकोण।"

न्यायिक पहलू से युद्ध का अध्ययन सर्वप्रथम 17 वीं शताब्दी में ग्रेटियस ने किया था। न्यायिक दृष्टि से दो विरोधी समूहों में चल रहे संघर्ष अथवा प्रतियोगिता की युद्ध की संज्ञा देने के लिये किन तत्वों का होना आवश्यक है, इसके लिये ग्रेटियस ने बल प्रयोग की कसौटी का चयन किया। इस प्रकार जब दो विरोधी सूमह एक–दूसरे के विरूद्ध बल का प्रयोग करने में रत हों तो इस अवस्था को युद्ध कहा जा सकता है। ग्रेटियस के शब्दों में –"युद्ध

दो समुदायों की वह अवस्था है, जबकि वे बलपूर्वक विवाद में लगे होते हैं।''

अन्तर्राष्ट्रीय न्याय शक्ति ओपन हाईम ने युद्ध को परिभाषित करते हुए कहा है कि –''युद्ध दो अथवा उससे अधिक राज्यों के बीच एक–दूसरे को पराजित करने तथा विजेता राज्य की इच्छा के अनुसार शांति थोपने के लिये सशस्त्र संचालित विवाद है।''

''युद्ध राष्ट्रों, राज्यों अथवा शासकों अथवा उसी राष्ट्र अथवा राज्य के भीतर विभिन्न बलों के बीच सशस्त्र सेनाओं के माध्यम की विरोध पूर्ण विवाद है, वह किसी विदेशी शक्ति के विरूद्ध अथवा राज्य के भीतर विरोधी दल के विरूद्ध सशस्त्र सेनाओं का प्रयोग है।

मोल्टके के अनुसार, ''युद्ध मनुष्यों द्वारा किया जाने वाला एक बलपूर्वक कार्य है, जिसका प्रयोजन राज्य के उद्देश्य को प्राप्त करना या बनाये रखना होता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हे कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायिक दृष्टि से युद्ध की मुख्य विशेषता सैन्य बल का प्रयोग है। इस प्रकार युद्ध को अन्य संघर्षों और विवादों से अलग रखने वाला मुख्य तत्व 'बल' प्रयोग ही है। अन्य दृष्टिकोण जैसे–सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि के रूप में युद्ध का अध्ययन करने वाले विद्वानों की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

ई.ए.हावल के अनुसार ''युद्ध से तात्पर्य एक सामाजिक समूह के द्वारा दूसरे समूह पर जीवन और समान के निश्चयपूर्वक संहार द्वारा दूसरे मूल्यों पर अपने हितों के विस्तार हेतु किया गया संघातिक आक्रमण है।''

इलियट एवं मेरिक के अनुसार, ''युद्ध उन सम्बन्धों का औपचारिक विच्छेद है जो शांति काल में राष्ट्रों को परस्पर एक दूसरे से बांधे रहते हैं।''

किम्बल यंग के शब्दों में – ''युद्ध मानव संघर्ष का सबसे हिंसात्मक स्वरूप है। साथ ही मनुष्य की सबसे प्राचीन संस्थाओं में से एक है, उसकी जड़ें साधनों एवं शक्ति के प्राप्ति करने के लिये संघर्ष भय समूहों के इतिहास में निहित है। आधुनिक युग में युद्ध राष्ट्रीयवाद एवं प्रभुसत्तावाद के सिद्धान्त एवं व्यवहार से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।''

जर्मनी के सुप्रसिद्ध जनरल एवं दार्शनिक क्लाजविट्ज के शब्दों में –''युद्ध राष्ट्र की राजनीति को विभिन्न साधनों द्वारा पूर्ण करने के अतिरिक्त कुछ नहीं है।यह एक हिंसात्मक कार्य है, जिसका प्रयोजन विपक्षी को अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिये बाध्य करना है।''

प्रसिद्ध मानव–विज्ञानी मैलिनाउस्की ने एक सांस्कृतिक तथ्य के रूप में युग का विश्लेषण करते हुए उसे इस प्रकार परिभाषित किया है –''अपनी–अपनी नीतियों का अनुगमन करने के फलस्वरूप उत्पन्न करने वाले वे विवाद जो स्वतंत्र राजनीतिक इकाईयों द्वारा संगठित सैनिक शक्ति के माध्यम से संचालित किये जाते हैं, युद्ध कहलाते हैं।''

युद्ध सम्बन्धी सम्पूर्ण साहित्य की समीक्षा करते हुए क्विन्सी राईट कहते हैं कि युद्ध की एक पूर्ण परिभाषा निर्धारित करने के लिये हमें केवल साहित्य पर निर्भर न होकर, अपितु हमें उन घटनाओं का भी अध्ययन करना चाहिए, जिन्हें इतिहास में युद्ध के नाम से पुकारा जाता है।

क्विंसी राइट ने युद्ध को इस प्रकार परिभाषित किया है–''युद्ध दो समुदायों के पारस्परिक सम्बन्धों की वह अवस्था है जिसकी मुख्य विशेषताएँ तीव्र सैनिक सक्रियता, अत्यधिक मनोवैज्ञानिक तनाव, असाधारण न्यायिक स्थिति तथा सामाजिक एकीकरण की प्रवृत्ति है।''

उपर्युक्त पौरस्त्य और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि जैसे–जैसे समाज के समाज के विभिन्न संगठनों और क्षेत्र में परिवर्तन हुआ है, वैसे–वैसे युद्ध के अर्थ और स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया है, वास्तव में मनुष्य का स्वभाव से ही संघर्षशील प्राणी होता है। दूसरों से उसका संघर्ष होना स्वाभाविक है, मनुष्य की संघर्ष की यह स्वाभाविक भावना ही युद्ध का कारण है, यद्यपि प्रत्येक परिस्थिति में युद्ध द्वारा पारस्परिक विवादों को निपटाने की अनुज्ञा नहीं थी और न ही राष्ट्र से यह आशा की जाती थी कि वे प्रत्येक साधारण से साधारण विषय का निवारण युद्ध के माध्यम से करेंगे, फिर भी इस विषय में कोई सामान्य नियम नहीं था कि किस विवाद को युद्ध द्वारा निपटाया जाय या जिसको बातचीत द्वारा पत्र–व्यवहार से।

प्राचीनकाल में युद्ध स्वर्ग प्राप्ति का एकमात्र साधन माना जाता था। यह भावना आज दूर हो गयी है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में धार्मिक तर्कों से काम नही चल सकता। आज का मनुष्य केवल वैज्ञानिक तर्कों में ही विश्वास करता है, लोगों को धर्म पर चलने के लिये भी वैज्ञानिक तर्क अपरिहार्य है, लिडिमल हार्ट महोदय का मत है कि संग्राम बीमार सभ्यता की दशा है और रोगी में ताप उसी के कारण है, बीमारी का उपचार करने में ताप स्वयं ही दूर हो जायेगा, तन्त्र–मन्त्रों से ताप नहीं हटेगा, झाड़–फूंकी से रोग का उपचार नहीं होगा, बीमारी का विश्लेषण करना पड़ेगा और उसके आधार पर उपचार और वह उपचार और विशेषण निहित हैं, तर्क पूर्ण शांति बाद में।

अन्त में हम कह सकते हैं कि युद्ध वर्ग प्रवृत्तियों की पराकाष्ठा के साथ विस्तृत रूप में हिंसात्मक आश्रय है, जो कि अनेक असामान्य स्थितियों और संघर्षों की असंख्य कार्य विधियों में एक विधि है। यदि देखा जाये तो युद्ध केवल उसी अस्तित्व में आता है, जब शत्रुता एवं हिंसा एक साथ ही निश्चित सीमा का अतिक्रमण करके उस नवीन स्थिति में पहुँच जाती है, जिसे न्याय तथा जनमत युद्ध के रूप में स्वीकार करने को बाध्य हो जाते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं, युद्ध का तात्पर्य दो या दो से अधिक परस्पर वैमनस्य रखने वाले वृहत समूहों या राष्ट्रों के बीच होने वाले भीषण संघर्ष से है, जिसमें एक समूह या दूसरे राष्ट्र पर सशस्त्र सेनाओं के माध्यम से थोपता है।

उक्त सभी परिभाषाओं में हिंसा अथवा शक्ति के प्रयोग की बात कही गयी है किन्तु आजकल अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा के बिना भी शीतयुद्ध होते हैं। आधुनकि काल में बिना युद्ध घोषणा के ही युद्ध प्रारम्भ हो जाते हैं। किन्तु रामायण एवं महाभारत काल में युद्ध . प्रारंभ होने से पूर्व विधिवत् दोनों पक्षों द्वारा घोषणा की जाती थी और युद्ध स्थल का चयन भी साधारणतया दोनों पक्षों की सहमति पर ही किया जाता था। युद्ध क्षेत्र का चयन करते समय खाद्य सामग्री की आपूर्ति सैनिक एवं जानवरों के लिये पानी की सुविधा आदि पर भी ध्यान दिया जाता था।

महाकाव्य काल में लड़े गये युद्धों में इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया है कि युद्ध का क्षेत्र सीमित हो और ऐसी जगह हो, जहाँ पर नागरिक क्षेत्र न हो। साधारण नागरिकों, जिनका युद्ध से कोई प्रयोजन न हो, उन पर प्रहार नहीं किया जाता था। जबकि पश्चिमी सैन्य विशेषज्ञ डूहेट ने प्रथम विश्वयुद्ध के बाद आगामी होने वाले युद्ध के विषय में अपने विचार देते हुए उसने कहा था कि वायुयान द्वारा शत्रु के नागरिकों, औद्योगिक क्षेत्रों तथा शहरों आदि पर आधिकाधिक गोलीबारी की जाय। किन्तु प्राचीन भारतीय इतिहास में, विशेष रूप से महाकाव्य काल में ऐसे उदाहरण देखने को नहीं मिलते हैं, जिसमें साधारण नागरिकों को तंग किया गया। महाकाव्य काल में युद्ध तब तक चलता था, जब तक विपक्षी राजा की हत्या नहीं कर दी जाती थी अथवा बन्दी नहीं बना लिया जाता था। उन्हीं लोगों के ऊपर आक्रमण किया जाता था, जो युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते थे।

किन्तु आधुनिक युद्धों में इसका क्षेत्र केवल लड़ाई का मैदान न होकर, बल्कि युद्ध–रत राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के रसोईघर तक पहुँच चका है आजकल का सम्पूर्ण युद्ध अब केवल सैनिकों तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि देश के प्रत्येक नागरिक से इसका सम्बन्ध है।

वर्तमान में अनेक आधुनिक युद्ध इस बात का प्रमाण है उदाहरण के लिए हम रशिया और यूक्रेन में होने वाले युद्ध से समझ सकते है

कि युद्ध अब सेनाओं के मध्य ही नहीं अपितु देश में निवासरत् नागरिकों के व्यक्तिगत हितों तक भी पहुंच चुका हैं। किसी राष्ट्रों के मध्य अगर युद्ध होता है तो न केवल व्यक्ति अपितु उस राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृति सभी व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। इस लिए जहां तक संभव हो सके युद्ध की चुनौतियों को टाला जा कर आपसी वैमनस्य बातचीत एवं समझौते के माध्यम से युद्ध टालने के प्रयास किये जाने चाहिए। जो कि मानव एवं मानवीयता दोनों के लिए नितांत आवश्यक है।

सन्दर्भ

1. मेजर आर.सी.कुलश्रेष्ठ : भारतीय सैन्य विज्ञान, पृ.41
2. जे.एफ.सी. फुलर : अर्मामेन्ट एण्ड हिस्ट्री।
3. मेजर आर.सी.कुलश्रेष्ठ : भारतीय सैन्य विज्ञान, पृ.41
4. अर्थशास्त्र, 12–1, पृ.382
5. महाभारत शांति पर्व अध्याय–310–318
6. मनुस्मृति पृ.7/198–199
7. शतपथ ब्राह्मण पृ.13/1/5/6
8. शतपथ ब्राह्मण पृ.13/6/2/10
9. विनय कुमार सरकार का अनुवाद पृ. 4–7, 468–2
10. अन्तर्राष्ट्रीय विधि, पृ.406
11. भारतीय सैन्य विज्ञान, पृ.42
12. क्विन्सी राईट–ए स्टडी ऑफ वार
13. एल.ओपन.हाईम : इन्टरनेशनल लॉ (Treatize) पृ.203
14. पान्थर इन पाकिंस – 'इन्टरनेशनल रिलेशन्स'।
15. ई.ए.हावक : मैन इन द प्रिमिटिव वर्ल्ड
16. इलियट एण्ड मेरिक– सोशल डिस आर्गेनाईजेशन
17. किम्बल यंग : हैण्डबुक ऑफ सोशल साइक्लोजी
18. क्लाज विट्ज : ऑन वार
19. मैलिनाउस्की : एन एनथोपोलॉजिकल एनलासिस आफ वाक्विसी